ARTICLE

ADVANCE RESEARCH JOURNAL OF SOCIAL SCIENCE
| December, 2011 | Volume 2 | Issue 2 | 286-288

लोक साहित्य में रसाभिव्यक्ति

■रेखा शर्मा एवं जे0 के0 जैन

KEW WORDS : लोक साहित्य, उल्लासावस्था, ओज अवस्था, क्षोभावस्था

How to cite this Article: Sharma, Rekha and Jain, J.K. (2011).Lok Sahitya Mae, Rasabhivayakti, *Adv. Res. J. Soc. Sci.,* **2** (2) : 286-288.

Article chronicle : Received : *03.11.2011;* **Accepted** : *29.11.2011*

मानव जीवन का अन्तिम तथ्य है– 'आनन्द'। हमारे विभिन्न क्रियाकलाप आनन्द की ही प्राप्ति के लिए संयोजित होते हैं। व्यावहारिक रूप से यह आनन्द ही रस है। इसकी साहित्यिक मीमांसा यह है कि वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त भाव सौन्दर्य का आस्वादन रस है। रस की महिमा व्यापक है।

प्राचीन भारतीय आचार्यो के अनुसार रस ही काव्य की आत्मा है। इस सिद्धान्त के प्रथम आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभावों के संयोग से रस की उत्पत्ति बतायी है। आचार्य मम्मट ने भी विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी द्वारा अभिव्यक्त स्थायी भावों को रस माना है।

साहित्य दर्पणकार की रस परिभाषा भी भरतमुनि के रस–सूत्र की सुन्दर निवृत्ति है। उन्होंने भी विभावादी योजना और सहृदय की रत्यादि वासना की रसमयता में व्यMõ–य व्य×जक भाव सम्बन्ध की अनिवार्यता स्वीकार की है। रस के स्वरूप का विवेचन करते हुए उन्होने उसे अखण्ड, स्व प्रकाशमय, चिन्मय, वेद्यान्तरस्पर्श शून्य और ब्रह्मानन्द सहोदर कहा है।

रस की प्रतिष्ठा लोक–साहित्य में सबसे अध्कि मिलती है परलोक साहित्य में इस प्रतिष्ठा की स्थिति मनीषी साहित्य से भिन्न प्रकार की होती है। यहाँ पर रस उतना वस्तु सामग्री में शास्त्रीय उपादानों से परिपक्व नहीं होता है, जितना अभिप्रेत रहता है। अद्भुत, वीर, वीभत्स, वात्सल्य और कहीं–कहीं हल्के भय का संचार मिल जाता है और कहीं–कहीं हास्य रस का। किन्तु लोक कवि के यहाँ इनका इतना सूक्ष्म महत्व नहीं। उसकी अभिव्यक्ति में ऐसे सूक्ष्म भाव जहाँ–वहाँ क्षणिक संचार कर जाते हैं लेकिन स्थायी नहीं होते। इन भावों से ऊपर और स्थल है हृदय और मन की विशेष अवस्था। यह विशेष अवस्था वृत्ति है, यह स्थूलता तीन प्रकार की हैं–

1. उल्लासावस्था 2. ओज अवस्था 3. क्षोभावस्था।

उल्लास में प्रेम रति, ऐश्वर्य वैभव से उत्पन्न मनोस्थिति आदि का समावेश होता है। ओज में वीरता, उत्साह, अद्भुत, रौद्र आदि भावों का संचार होता है। क्षोभ में भय, क्रीडा, करूणा, निराशा आदि का संचार होता है।

यही कारण है कि छद्म सौन्दर्य और लालित्य का खोल ओढ़कर बनावटी जिन्दगी को प्रस्तुत करने वाला श्रृंगार भारतीय जिन की भौतिक विवशताओ से उपजी करूण रस की धरा अथवा वीर रस के नाम पर क्रान्ति का विद्रूप यहाँ दृष्टि गोचर नही होता। लोक साहित्य में प्रयुक्त रस इस प्रकार हैं–

श्रृंगार रस की अभिव्यक्तिः

'रति' स्थायी भाव से अभिव्य×जत होने वाला रस श्रृंगार रस है। अग्नि पुराण में अन्य सभी रसों का श्रृंगार से ही प्रादुर्भाव माना है।

श्रृंगार रस के दो भेद है–

Author for correspondence:
रेखा शर्मा, शिक्षा विभाग, एस0डी0 कॉलेज, मुजफ्फरनगर।

Address for the coopted Authors:
जे0के0 जैन, शिक्षा विभाग, एस0डी0 कॉलेज, मुजफ्फरनगर।

1. संयोग। 2. वियोग।

मम्मट ने विप्रलम्भ के '5' भेद स्वीकार किये हैं–

अभिलाषा, विरह, ईर्ष्या, प्रवास और शाप हेतुक।[4]

लोकधर्मी साहित्य में प्रस्तुत श्रृंगार के कतिपथ उदाहरण इस प्रकार है–

स मन्थरावलि्गितपीवरस्तनीः परिश्रम म क्लान्तविलोचनोत्पलाः।

निरीक्षितुं नोपरराम बल्लवीर भिप्रनृत्ता इव वारयोषितः।।[5]

(उपर्युक्त उदाहरण में ग्वालों की स्त्रियो का दधिमंथन आलम्बन विभाव है। उनके पीन स्तनों का मंद–मद हिलना, थका होना, नेत्रो का अलसाना आदि उद्दीपन विभाव है। गोपस्त्रियो का इस क्रिया में रोमान्चित होना अनुभाव है। मन का न हट पाना व्यभिचारी भाव है।)

कुम्भी संचित तण्डुलाः प्रतिदिनं नीताक्षय मूषिकै–

स्वास्तुतुष्वेव पिंशगिवोदरतला शीर्यन्ति वार्ताकवः।

जीर्णजाल कमारनालपिठरी गर्भे च काकारवं।

दीनायाः पथिक स्त्रियाः प्रियतमप्रत्यागमाकांक्षया।।[6]

उपर्युक्त उदाहरण में प्रवासी पति आलम्बन है। सन्चित चावलों का समाप्त होना उद्दीपन विभाव है। गृहिणी का व्याकुल होना अनुभाव है। पति के आने की मनौती व्यभिचारी भाव है।

हास्य रसः

यह रस उत्तम – मध्यम – अधम – प्रकृत भेद से छः प्रकार का होता है। उत्तम व्यक्तियो में 'हसित' मध्यम श्रेणी के लोगो में विहसित और अवहसित होता है। नीच पुरूषो में 'अपहसित और अविहसित' होते हैं।[7]

लोकधर्मी साहित्य में वैसा उच्च कोटि का हास नही मिलता है जैसा अभिजात वर्ग के कवियों के साहित्य में मिलता है। इसमें तो यत्र तत्र गरीब के परिवेश से उपजा हास–परिहास का अधिक पुट मिलता है।

जैसे–

स ब्रीहिणां यावदपासितुं गताः शुकान्भृगैस्तावदुपद्रुत श्रियाम्

कैदारिकाणामाभितः समाकुलाः सहसामलोकयतिस्म गोपिकाः।।[8]

उपर्युक्त उदाहरण में तोतो के झुण्ड़ एवं हरिणों के झुण्ड़ के द्वारा धन पर हमला आलम्बन विभाव है। रखवालिन के द्वारा इधर–उधर भागने की चेष्टा से कृष्ण का हँसना अनुभाव है। रखवालिन को तांकते रहना व्याभचारी भाव है।

यान्ति शुचमकृत द्वारा द्वे भार्ये नेति कृतं द्वाराः।

तो परदारा नेति स्त्रीस्तृप्तान्न पश्याम :।।[9]

उपर्युक्त उदाहरण में आलम्बन पुरूष है। उद्दीपन दारा है। अनेक पत्नियों के हो जाने पर भी दुःख को अनुभूति अनुभाव है। परायी स्त्री के प्रति गिरती मनोवृत्ति व्यभिचारी भाव है। पुरूषों के विचारो के ऊपर व्यî õ%य होने के कारण हास्य रस आता है।

करूण रसः

'शोक' स्थायी भाव से अभिव्य×जत होने वाला रस करूण संज्ञा से अभिहित है। इसका स्वरूप निर्मल नवीनता सा स्निग्ध, सरस एवं दिव्य माना गया है।

लोक साहित्य में करूण की मार्मिक व्य×जना है। इसमें सामान्य स्त्री–पुरूष अपने दुःख की गहराइयों को स्वर और लय में बाँधकर हृदय को हलका कर लेते है। लोक धर्मी साहित्य में जीवन की वास्तविकता का वास्तव में कारूणिक निरूपण है। क्योंकि गरीबी, भूखमरी, और हताशा से जुझते हुए व्यक्तियों के प्रति सहृदय कवि के मन में मानवता के नाते करूणा उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

इस परम्परा का कवि विराट् जनसागर में तटस्थ नही हैं। वह उसमें डूबता जाता है।

यथा–

वैराग्यैकसमुन्नतातनु तनुः शीर्षाम्बरं विभ्रती

क्षुत्क्षामैक्षणकुक्षिभिश्च शिशुभिर्भोक्तुंसमम्यर्थिता

दीना दुःखस्थ कुटुम्बिनी प्रविगलद्वाष्पम्बुधैताननना

प्येकं तण्डुलमानकं दिनशतं नेतुं समाकांक्षति।।[10]

उपर्युक्त उदाहरण में ध्नाभाव आलम्बन है। बच्चों के भूखे चेहरे, उनकी बोली उद्दीपन है। इस स्थिति में दुःखी होकर रोना अनुभाव है। थोड़े से चावलो से अधिक दिन काटने का असम्भव भाव व्यभिचारी भाव है।

इस प्रकार हम देखते है कि लोक साहित्य में करूण रस में गरीब जनता की मानसिक पीड़ा, विवशता को प्रकट किया गया है।

भयानक रसः

भय स्थायी भाव है। नीच जन, अधम प्रकृति स्त्री आदि इसमें नायक होते है। जिससे भय उत्पन्न होता है उसे आलम्बन विभाव कहते है। इनकी भयंकर चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव बन जाते है। मालिन्य लड़खड़ाते हुए शब्द से बोलना, पसीना आ जाना आदि अनुभाव है। जुगुप्सा, आवेग, भ्रान्ति, मृत्यु आदि व्यभिचारी भाव है।[11]

यथा–

तपुर्जम्भो वन आ वात चोदितो यूथो न साहबाँ अव वाति वंसगः।

अभिव्रजन् नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः।।[12]

उपर्युक्त उदाहरण में आलम्बन अग्नि है। उद्दीपन ज्वालाओ के हथियार चलाना, स्थावर जî õ%म का वश में होना, भयलस्त होकर कम्पन करना अनुभाव है। अग्नि का आवेश व्यभिचारी भाव है।

लोक साहित्य में अग्नि को लोक सें सम्बन्धित मानकर उसके भयावह रूप का चित्रण है।

वीर रसः

इस रस के महेन्द्र देवता है। विजेतव्य पदार्थ आलम्बन विभाव है तथा विजेतव्यादि की चेष्टा उद्दीपन है। सहायको का खोजना अनुभाव है। धृति, मति गर्व, रोमांच आदि व्यभिचारी भाव है।[13]

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठतेद वृथा जूहूभिः सृण्या तुविष्वणिः।

तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णन्त एम रूशदूर्मे अजर।।[14]

उपर्युक्त उदारिण मे अग्नि आलम्बन है। वायु से प्रेरित होकर तीखी जिàा से काष्ठखण्ड़ों को चीरना उद्दीपन है। प्यासे पुष्ट वृषभ की तरह वनो पर झपटना अनुभाव है। रोमा×च व्यभिचारी भाव है।

वीभत्स रसः

जुगुप्सा स्थायी भाव है। दुर्गन्ध, माँस, रूधिर, मेदा आलम्बन विभाव है। उन्हीं वस्तुओ में कृमि पड जाना आदि उद्दीपन विभाव है। थूकना, मुख का ढकना आदि अनुभाव है। मोह स्मृति, आवेग, मरण, ग्लानि, व्यभिचारी है।

लोक धर्मी साहित्य में वीभत्स रस की अभिव्यक्ति–

स्थूल प्रावरणो¿ति मात्रा कथनः कासाश्रुलालविलो

भग्नोरः कटिपृष्ट जानुजघनो, मुग्धे¿तिथी नवारयन्।

श्रण्वन् घृष्टवधूवयांसि धनुषा सन्त्रासयन् वायसा

नाशापाशनिबद्ध जीवविभवो वृद्धो गृहे ग्लायति।।[16]

उपर्युक्त उदाहरण में कफ, आसूँ और लार से भीगा मुँह आलम्बन है। पीठ, पसलियाँ, घुटने टूटने पर भी आते–जाते को टोकना उद्दीपन है। ढीठ बहू को जली कटी सुनाना अनुभाव है। व्यधि मरण व्यभिचारी भाव है।

इस प्रकार उपसंहार रूप में हम कह सकते है कि वास्तव में लोकधर्मी साहित्य गरीब जीवन की वास्तविकता का उद्गार है। गरीब व्यक्ति को कितनी वीभत्स पूर्ण स्थिति हो जाती है, इसका यथार्थ चित्रण है। गरीब आज भी समाज में घृणा का पात्र बना हुआ है।

लोक धर्मी साहित्य में रसो का परिपाक अभिजात वर्ग के कवि जैसा नही है, लेकिन फिर भी वह जीवन की वास्तविकता को उजागर करने में पूर्णतः समर्थ है। इसमें अन्य रसो जैसे– रौद्र, शान्त, वात्सल्य आदि गौण रूप में यत्र–तत्र प्रयुक्त है।

फुट नोटः

1. नाट्यशास्त्र –भरत मुनि 6/33
2. काव्यप्रकाश–आचार्य मम्मट–4/27–28 सूत्र 43 पृ0 95
3. ब्रजलोक साहित्य का अवलोकन–डॉ0 सत्येन्द्र–पृ0 357–358
4. काव्यप्रकाश – मम्मट – व्याख्या कार – आचार्य विश्वेश्वर – सिद्धान्त शिरोमणि पृ0 123
5. किरातार्जुनीयम् –भारति – 4/17 पृ0 11
6. संस्कृत की लोकधर्मी परम्परा –राधबल्लभ त्रिपाठी
7. साहित्य दर्पण – पं0 विश्वनाथ 3/214, 215, 216, 217, 218, 219ए पृ0 158–159
8. शिशुपाल वध – माघ – 12/42
9. संस्कृत की लोकधर्मी परम्परा – डॉ0 राधवल्लभ त्रिपाठी
10. सूक्तिम×जरी – पं0 बलदेव उपाध्याय – पृ0 72
11. साहित्य दर्पण – विश्वनाथ – 3/235, 36, 37, 38, पृ0 164
12. ऋग्वेद –1/58/5 पृ082
13. साहित्य दर्पण – विश्वनाथ – 3/232, 33, 34, पृ0 162
14. ऋग्वेद –1/58/4 पृ082
15. साहित्य दर्पण – विश्वनाथ – 3/239, 40, 41, 42 पृ0 165
16. वैराग्यपरातक–भर्तहरि।